ORIGINAL ARTICLE ISSN:- 2231-5063

Golden Research Thoughts

सांराश :

सभ्यता और संस्कृति मानव विकास के दो पहलू हैं। सभ्यता समाज की बाह्य अवस्थाओं का नाम है जबकि संस्कृति व्यक्ति के अन्तर का विकास है या इसे यूं भी कह सकते हैं कि सभ्यता का आंतरिक प्रभाव संस्कृतिहै। आचार और विचाार का घनीभूत रूप है, सभ्यता और संस्कृति। सर्वमंगलमयी भारतीय सं स्कृति की यह विशेषता रही है कि इसने सभ्यता के विकास क्रम में कभी संस्कृति का अनादर नहीं होने दिया। चाहे बड़ा से बड़ा कष्ट क्यों न उठाना पड़े परन्तु जीवन मू ल्यों का सं रक्षण यह यहाँ को अद्भूत औ र गौ रवशाली परं परा रही है । यही कारण है किसर्वमंगलकारी इस संस्कृति ने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। दुनिया भर के दार्शनिक,राजनीतिज्ञ, नीति–निर्धारक, लेखक, चिन्तक आदि इससे प्रभावित होकर यह स्वीकार करते हैं कि इस सं स्कृति में निहित वसुधैव कुटुंबकम् की भावना में ही सम्पूर्ण विश्व का हित सुरक्षित है । इस भावना का प्रभावी प्रकटीकरण 11 सितम्बर, 1893 को स्वामी विवेकानंद ने शिकागो (अमेरिका) की ऐतिहासिक धर्मसभा में भी किया था।

माधुरी यादव[1] , रामकुमार मौर्य [2]

[2]प्राध्यापक हिन्दी , शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम, म.प्र.

वसुधैव कुटुम्बकम् की प्रासंगिकता

प्रस्तावना :

आज वैश्विक परिदृश्य पर दृष्टि डाले तो हम पाते हैं कि दो–दो विश्व युद्ध झेल चुकी यह दुनिया आज एक बाजार बन कर रहगयी है। आज हर बात को भौतिक विकास और पैसे से जोड़ा जा रहा है। एक–दूसरी कंपनियों में प्रतिस्पर्धा हो रही है इतना ही नहीं तो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अपना प्रतिद्वंद्वी समझ रहा है। इस बढ़ती आपाधापी में न व्यक्ति का हित सुरक्षित है, न समाज का और न ही राष्ट्र का। क्यों कि जब भौ तिकता की अंधी दौड़ शुरू होती है तो उपभोक्तावादपनपता है, जिससे जीवन मूल्यों और नैतिक सिद्धान्त बिखरते जाते हैं कारण केन्द्र में व्यक्ति के कल्याण या हित के स्थान पर पैसा बैठ जाता है।

आज विश्व में पर्यावरण भी भीषण समस्या देखी जा रही है। देश–दुनिया के चिंतकों द्वारा यहाँ तक कहा जा रहा है कि अगलाविश्व युद्ध पानी के लिए लड़ा जाएगा। विकसित राष्ट्र विकासशील और कमजोर राष्ट्रों पर येन–केन–प्रकारेण अपना आधिपत्य स्थापित करने के प्रयास कर रहे हैं। उसके लिए शक्ति का प्रयोग भी किया जा रहा है जैसा ईरान के मामले में अमेरिका के नेतृत्व में विकसित देशों ने किया। जहाँ ऐसा नहीं है वहाँ आतं कवाद को प्रश्रय दे कर अशां ति फै लायीजा रही है, यह कैसी विडम्बना है कि इन विकसित राष्ट्रों द्वारा एक ओर विध्वंसक हथियार दिए जाएं और दूसरी ओर दिखावे के लिए शांति की अपील की जाए। आर्थिक तंत्र भी इसके लिए काफी हद तक जिम्मेदार है । गरीब देशों को कर्ज दिया जाता है बदले में उनसे बहुत कम कीमत में कच्चा माल लिया जाता है और अपने यहाँ का अनुपयोगी औररीजेक्ट माल अधिक कीमत में इन देशों को बेचा जाता है। एक प्रकार से यह आर्थिक रूप से गुलाम बनाने की कोशिश है। इन सब घटनाक्रमों के चलते एक मार्ग सूझता है, वह है– भारत की महान संस्कृति जो 'जियो ओर जीने दो' की श्रेष्ठ परिकल्पना के साथ संपूर्ण विश्व को अपना बंधु अपना कुटुंबी मानती है। भारतीय दर्शन और यहाँ केसामाजिक जीवन में प्रारंभ से ही संयुक्त परिवार को महत्त्व दिया गया है। जिसमें परिवार का सदस्य बचपन से ही यह संस्कार प्राप्त कर लेता है कि सबके हित में मेरा हित और सबकी खुशी, सबके भले में मेरा भला यहाँ बहुत छोटे से बच्चे को ऊंगली पकड़कर कहा जाता है– ये दादा की, ये दादी की, ये नाना की, ये माँ की, ये पिता की ..... इस प्रकार सबके साथ जुड़ ाव रखने की घुट्टी पिलाई जाती है। यही बात व्यापक रूप से राष्ट्र पर भी लागू होती है जब सभी राष्ट्र एक दूसरे को परस्पर अपना कुटुंबी, अपना पारिवारिक सदस्य मानेंगे तो विश्व से अशांति, कलह, प्रतिस्पर्धा की अंधी दौड़ स्वयमेव समाप्त हो जाएगी। अति प्राचीन काल से यहाँ के वेदों में भी यह बात परिलक्षित होती है। अथर्ववेद में कहा है –

नितद् दधिषे अवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे।[1]

अर्थात् जिस घर में छोटे–बड़े सब मिलकर रहते हैं, वह घर अपने बल पर सदा सुरक्षित रहता है।

इसी प्रकार विश्व वन्दनीय ग्रंथ गीता में भी कहा गया है कि मानव–मात्र आपस में अपना कर्तव्य समझकर परस्पर प्रेम करें । उसी में उनकी उन्नति एवं कल्याण निहित है –

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।[2]

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो यह एकसामान्य सिद्धान्त है कि सद्भाव एवं स्नेह की धारणा एकत्व, निजत्व, आत्मीयता, सहयोग एवंत्याग की भावना को प्रेरित एवं पोषित करती है। स्वाभाविक रूप से यही तत्व कौटुम्बिक संबंधों के आधार स्तंभ है। जो ममत्व ओर लगाव अपने कुटुम्ब–सदस्यों के प्रति होता है वह अन्यों के साथ नहीं । यहाँ तक कि अगले द्वार पर रहने वाले पड़ोसी तक के प्रति भी नहीं होता (ऐसा आजकल प्रायः हर जगह देखा जा सकता है)। ऐसे में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना जागृत होने पर निश्चित रूप से ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, अलगाव आदि स्वयं ही मानव हृदय से तिरोहित हो जाएंगे। एक प्रसिद्ध लाकोक्ति है– उदारता अपने घर से ही प्रारम्भ होती है । यह सुगं ध की तरह संचरित होकर विश्व में फैल सकती है , यदि सच्चे हृदय से उसे ग्रहण किया जाय । एकात्म भाव के अनेक सूत्र वेदों में भी व्याप्त है । राष्ट्रीय एकीकरण औ र विश्वबन्धुत्व का सुन्दर उपदेश देते हुए अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है–

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्त्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां धेनुरनपस्फुरन्ती ।[3]

अर्थात् इस पृथ्वी पर भिन्न–भिन्न धर्मों, जातियों, भाषाओं, स्थानों, रीति–रिवाजों और विचारों के मनुष्य रहते हैं, किन्तु राष्ट्रहितमें अपनी भिन्नता भुलाकर एक साथ एकजुट होकर रहना चाहिए। इस मंत्र में 'यथौकसम्' सेअभिप्राय है कि इसी प्रकार संपूर्ण मानव समाज को भिन्न–भिन्न विचारों तथा भिन्न–भिन्न भाषाओं आदि के होते हुए भी एकता के सूत्र में बंधे रहना चाहिए। ऐसा होगा तो जैसे गाय अचल खड़ी रहकर दूध की सहस्त्रों धाराएं दे डालती हैं, वैसे हीपृथ्वी माता धन–धान्य को सहस्त्रों रूपों में देकर मानव का कल्याण करेगी। इस प्रकार की भावना विविधताओं के होते हुए भी राष्ट्रीय एकता और विश्व बंधुत्व की भावना को बल प्रदान करेगी।

इसी प्रकार सम्राट अशोक का वह सं देशभी आज पूरी तरह प्रासंगिक लगता है जो शांतिदूतों के द्वारा उन्होंने विभिन्न देशों में भेजा था – 'अब तकमनुष्य–मनुष्य का शत्रु रहा है। उसने मानव समाज को भिन्न–भिन्न टुकड़ों में बाँट दिया है। ऐसी अवस्था हो गई है कि एक धरातल पर खड़े होकर हम एक स्वर में एक बात नहीं बोल सकते। इस मार्ग पर चलकर मानव को घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, कलह एवं युद्ध के सिवाय कुछ हाथ नहीं आया। समय आ गया है, जब हमें जाति–भेद, देश–भेद को त्यागकर एक सूत्र में बंध जाना है। हमें स्मरण रखना होगा कि सम्पूर्ण विश्व हमारा देश है और संपूर्ण मानव समाज हमारी जाति है।

प्रकट है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की महानभावना के क्रियान्वयन में ही राष्ट्र और विश्व का हित निहित है। आज यह भावना संपूर्ण पृथ्वी के लिए पूरी तरह अर्थवान और प्रासंगिक है। अतः सभी को अपने क्षुद्र अहं को भुलाकर

उदार दृष्टि से इस अवधारणा को अपनाना होगा इसी में सबका कल्याण, सबका मंगल है।

संदर्भ –

1. अथर्ववेद – 5/2/6 ।
2. श्रीमद्भगवद्गीता – अध्याय 3 , श्लोक 11 ।
3. अथर्ववेद – 12/1/45 ।
4. सोती विरेन्द्रचन्द्र – भारतीय संस्कृतिके मूल तत्त्व, पृ. 21 से उद्धृत।